

९२. अनिह्ववाख्यानम्

यस्य सत्केवलज्ञाने भाति विश्वमणूपमम्। तं जिनेन्द्रं प्रणम्योच्चै-रनिह्वकथां ब्रुवे ॥१॥
 अवन्तिविषये श्रीमानुज्जयिन्यां विचक्षणः। राजाभूद्धृतिषेणाख्यस्तद्राज्ञी मलयावती ॥२॥
 चण्डप्रद्योतनः पुत्रस्तयोर्जातो गुणोज्ज्वलः। रूपलावण्यसौभाग्यमण्डितः पूर्वपुण्यतः ॥३॥
 दक्षिणादिपथे वेनातटाख्ये नगरे तथा। ब्राह्मणः सोमशर्माभूत्सोमाख्या ब्राह्मणी तयोः ॥४॥
 सुपुत्रः कालसंदीवः सर्वविद्याविराजितः। उज्जयिन्यां समागत्य स श्रीसोमसुतो महान् ॥५॥
 चण्डप्रद्योतनं चारुलिपीश्चाष्टादशोत्तमाः। पाठयामास पूतात्मा कालसंदीववाक् सुधीः ॥६॥
 एकां म्लेच्छलिपिं तेन तं सुपाठयता तथा। कूटं पठन्प्रभोः पुत्रो हतः पादेन सोवदत् ॥७॥
 यदाहं संभविष्यामि भूपतिस्तु तदा तव। पादं संखण्डयिष्यामि युक्तं स्वल्पमतिः शिशुः ॥८॥
 ततस्तं पाठयित्वासौ कालसंदीवको द्विजः। गत्वा दक्षिणदेशं च मुनिर्जातो गुणोज्ज्वलः ॥९॥

९२. निह्व-असल बात को छुपाने वाले की कथा

जिनके सर्व-श्रेष्ठ ज्ञान में यह सारा संसार परमाणु के समान देख पड़ता है, उन सर्वज्ञ भगवान् को नमस्कार कर निह्व-जिस प्रकार जो बात हो उसे उसी प्रकार न कहना, उसे छुपाना, इस सम्बन्ध की कथा लिखी जाती है ॥१-२॥

उज्जैन के राजा धृतिषेण की रानी मलयावती के चण्डप्रद्योत नाम का एक पुत्र था। वह जैसा सुन्दर था वैसा ही गुणवान् भी था। पुण्य के उदय से उसे सभी सुख सामग्री प्राप्त थी ॥३॥

एक बार दक्षिण देश के वेनातट नगर में रहने वाले सोमशर्मा ब्राह्मण का कालसंदीव नाम का विद्वान् पुत्र उज्जैन में आया। वह कई भाषाओं का जानने वाला था। इसलिए धृतिषेण ने चण्डप्रद्योत को पढ़ाने के लिए उसे रख लिया। कालसंदीव ने चण्डप्रद्योत को कई भाषाओं का ज्ञान कराने के बाद एक म्लेच्छ-अनार्यभाषा को पढ़ाना शुरू किया। इस भाषा का उच्चारण बड़ा ही कठिन था। राजकुमार को उसके पढ़ने में बहुत दिक्कत पड़ा करती थी। एक दिन कोई ऐसा ही पाठ आया, जिसका उच्चारण बहुत क्लिष्ट था। राजकुमार से उसका ठीक-ठीक उच्चारण न बन सका। कालसंदीव ने उसे शुद्ध उच्चारण कराने की बहुत कोशिश की, पर उसे सफलता प्राप्त न हुई इससे कालसंदीव को कुछ गुस्सा आ गया। गुस्से में आकर उसने राजकुमार के एक लात मार दी। चण्डप्रद्योत था तो राजकुमार ही सो उसका भी कुछ मिजाज बिगड़ गया। उसने अपने गुरु महाराज से तब कहा-अच्छा महाराज, आपने जो मुझे मारा है, मैं भी इसका बदला लिए बिना न छोड़ूँगा। मुझे आप राजा होने दीजिये, फिर देखिएगा कि मैं भी आपके इसी पाँव को काटकर ही रहूँगा। सच है, बालक कम-बुद्धि हुआ ही करते हैं। कालसंदीव कुछ दिनों तक और यहाँ रहा, फिर वह यहाँ से दक्षिण की ओर चला गया। उधर कालसंदीव को एक दिन किसी मुनि का उपदेश सुनने का मौका मिला। उपदेश सुनकर उसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह मुनि हो गया ॥४-९॥

सोपि श्रीधृतिषेणाख्यो राजा श्रीजिनभक्तिभाक् । चण्डप्रद्योतनायोच्चैर्दत्त्वा राज्यं तपोगृहीत् ॥१०॥
 एकदा तस्य भूपस्य चण्डप्रद्योतनस्य हि । लेखः संप्रेषितो म्लेच्छराजनोच्चैः स्वकार्यतः ॥११॥
 केनापि वाचितो नैव स लेखस्तु ततो नृपः । स्वयं वाचयति स्मोच्चैस्तं लेखं तुष्टमानसः ॥१२॥
 स्मृत्वासौ सद्गुरुं चित्ते तं समानीय भक्तितः । पूजयामास शुद्धात्मा तत्पदाम्बुजमद्भुतम् ॥१३॥
 भवन्ति सद्गुरोर्वाचो भव्यानां शर्मदायकाः । यथा चौषधयोजन्तोर्भवेयुश्चारुसौख्यदाः ॥१४॥
 सोपि श्रीकालसन्दीवो मुनिः श्रीजिनसूत्रवित् । कस्मैचिच्छ्वेतसन्दीवनाम्ने दीक्षां जिनोदिताम् ॥१५॥
 दत्त्वा कुर्वन्विहारं च भव्यान्सम्बोधयन्सुधीः । श्रीमद्वीरजिनेन्द्रस्य विपुलाख्यगिरौ स्थिताम् ॥१६॥
 समवादिसृतिं प्राप्तो महाशर्मविधायिनीम् । कृत्वा तद्वन्दनां भक्त्या संस्थितो विमलाशयः ॥१७॥
 श्वेतसन्दीवकश्चापि नूतनो मुनिसत्तमः । समवादिसृतेर्बाह्ये योगे स्वातापने स्थितः ॥१८॥
 निर्गच्छता तदा श्रीमच्छ्रेणिकेन महीभुजा । दृष्टः कस्ते गुरुश्चेति संपृष्टोसौ सुभक्तितः ॥१९॥

इधर धृतिषेण राजा भी चण्डप्रद्योत को सब राज-काज सौंपकर साधु बन गया। राज्य की बागडोर चण्डप्रद्योत के हाथ में आयी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चण्डप्रद्योत ने भी राज्य शासन बड़ी नीति के साथ चलाया। प्रजा के हित के लिए उसने कोई बात उठा न रखी ॥१०॥

एक दिन चण्डप्रद्योत पर एक यवनराज का पत्र आया। भाषा उसकी अनार्य थी। उस पत्र को कोई राजकर्मचारी न बाँच सका। तब राजा ने उसे देखा तो वह उससे बच गया। पत्र पढ़कर राजा की अपने गुरु कालसन्दीव पर बड़ी भक्ति हो गई। उसने बचपन की अपनी प्रतिज्ञा को उसी समय भुला दिया। इसके बाद राजा ने कालसन्दीव का पता-लगाकर उन्हें अपने शहर बुलाया और बड़ी भक्ति से उनके चरणों की पूजा की। सच है, गुरुओं के वचन भव्यजनों को उसी तरह सुख देने वाले होते हैं जैसे रोगी को औषधि ॥११-१४॥

कालसन्दीव मुनि यहाँ श्वेतसन्दीव नाम के किसी एक भव्य को दीक्षा देकर फिर बिहार कर गए। मार्ग में पड़ने वाले शहरों और गाँवों में उपदेश करते हुए वे विपुलाचल पर महावीर भगवान् के समवसरण में गए, जो कि बड़ी शान्ति देने वाला था। भगवान् के दर्शन कर उन्हें बहुत शान्ति मिली। वन्दना कर भगवान् का उपदेश सुनने के लिए वे वहीं बैठ गए ॥१५-१७॥

श्वेतसन्दीव मुनि भी इन्हीं के साथ थे। वे आकर समवसरण के बाहर आतापन योग द्वारा तप करने लगे। भगवान् के दर्शन कर जब महामण्डलेश्वर श्रेणिक जाने लगे तब उन्होंने श्वेतसन्दीव मुनि को देखकर पूछा-आपके गुरु कौन हैं; किनसे आपने यह दीक्षा ग्रहण की? उत्तर में श्वेतसन्दीव मुनि ने कहा-राजन्, मेरे गुरु श्रीवर्धमान भगवान् हैं। इतना कहना था कि उनका सारा शरीर काला पड़ गया। यह देख श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने जाकर गणधर भगवान् से इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा-श्वेतसन्दीव के असल गुरु हैं कालसन्दीव, जो कि यहीं बैठे हुए हैं। उनका इन्होंने निहव किया-सच्ची बात न बतलाई इसलिए उनका शरीर काला पड़ गया है। तब श्रेणिक ने श्वेतसन्दीव को समझा कर उनकी गलती उन्हें सुझाई और कहा-महाराज, आपकी अवस्था के

स च प्राह मुनिः श्रीमद्वर्द्धमानो गुरुर्मम। इत्युक्ते पाण्डुरं तस्य शरीरं कृष्णतामितम् ॥२०॥
 ततो व्याघुटितः श्रीमाञ्छ्रेणिको गौतमं मुनिम्। तच्छरीरस्य कृष्णत्वकारणं पृष्टवानृपः ॥२१॥
 तेनोक्तं ज्ञानिना भूप स्वगुरोर्निह्वाद्भुवम्। तत्कायः कृष्णवर्णोभूतत्समाकर्ण्य धीमता ॥२२॥
 शीघ्रं पश्चात्समागत्य तत्समीपं महीभुजा। श्रेणिकेन शुभैर्वाक्यैर्भक्त्या सम्बोधितः स च ॥२३॥
 ततोऽसौ श्वेतसंदीवो मुनिः कृत्वा स्वनिन्दनम्। शुक्लध्यानेन संहत्वा घातिकर्मचतुष्टयम् ॥२४॥
 केवलज्ञानमुत्पाद्य लोकालोकप्रकाशकम्। पूजितस्त्रिजगद्भव्यैः संप्राप्तो मोक्षमक्षयम् ॥२५॥
 ततो भव्यैर्न कर्तव्यो निह्वः स्वगुरोः कदा। समाराध्यो गुरुर्यस्मात्स्वर्गमोक्षसुखप्रदः ॥२६॥
 स श्रीकेवललोचनोत्तितचतुरो भव्यौघसम्बोधको देवेन्द्रादिनरेन्द्रखेचरशतैर्भक्त्या सदाभ्यर्चितः।
 व्यक्तानन्तचतुष्टयो गुणनिधिः श्रीश्वेतसंदीववाक् कुर्यान्मे भवशान्तिमक्षयसुखं शीघ्रं जिनः शर्मदम् ॥२७॥
 इति कथाकोशे निह्वाख्यानं समाप्तम्।

१३. व्यञ्जनहीनाख्यानम्

नत्वा श्रीमज्जिनेन्द्रस्य पादपद्मद्वयं मुदा। वक्ष्ये व्यञ्जनहीनस्य कथां सम्बोधहेतवे ॥१॥
 देशे मगधसंज्ञेऽभूत्पुरे राजगृहे सुधीः। वीरसेनो महाराजो वीरसेना प्रिया तयोः ॥२॥

योग्य ऐसी बातें नहीं हैं ऐसी बातों से पाप बन्ध होता है इसलिए आगे से आप कभी ऐसा न करेंगे, यह मेरी आपसे प्रार्थना है। श्रेणिक की इस शिक्षा का श्वेतसंदीव मुनि के चित्त पर बड़ा गहरा असर पड़ा। वे अपनी भूल पर बहुत पछताये। इस आलोचना से उनके परिणाम बहुत उन्नत हुए। यहाँ तक कि उसी समय शुक्लध्यान द्वारा कर्मों का नाश कर लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया। वे सारे संसार द्वारा अब पूजे जाने लगे। अन्त में अघातिया कर्मों को नष्ट कर उन्होंने मोक्ष का अनन्त सुख लाभ किया। श्वेतसंदीव मुनि के इस वृत्तान्त से भव्यजनों को शिक्षा लेनी चाहिए कि वे अपने गुरु आदि का निह्व न करें क्योंकि गुरु स्वर्ग-मोक्ष के देने वाले हैं, इसलिए सेवा करने योग्य हैं ॥१८-२६॥

वे श्रीश्वेतसंदीव मुनि मेरे बढ़ते हुए संसार की-भव-भ्रमण की शान्ति कर-मेरा संसार का भटकना मिटाकर मुझे कभी नाश न होने वाला और अन्त मोक्ष-सुख दें, जो केवलज्ञानरूपी अपूर्व नेत्र के धारक हैं, भव्यजनों को हित की ओर लगाने वाले हैं, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा पूज्य हैं और अनन्तचतुष्टय-अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य से युक्त हैं तथा और भी अनन्त गुणों के समुद्र हैं ॥२७॥

१३. अक्षरहीन अर्थ की कथा

जिन भगवान् के चरणों को नमस्कार कर अक्षरहीन अर्थ की कथा लिखी जाती है। मगधदेश की राजधानी राजगृह के राजा जब वीरसेन थे, उसी समय की यह कथा है। वीरसेन की रानी का नाम वीरसेना था। इनके एक पुत्र हुआ, उसका नाम रखा गया सिंह। सिंह को पढ़ाने के लिए वीरसेन